वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण १३, शुक्रवार
दिनांक-२५-०६-१९७६, गाथा-३१ - ३२, प्रवचन-१८

३० गाथा हुई न? ३१।

आगे शुद्धात्मा के ज्ञानादिक लक्षणों से विशेषपने से कहते हैं :—

अमणु अणिंदिउ णाणमउ मुत्ति-विरहिउ चिमित्तु।
अप्पा इंदिय-विसउ णवि लक्खणु एहु णिरुत्तु।।३१।।

अन्वयार्थ :- यह शुद्ध आत्मा... 'अमनाः' परमात्मा से विपरीत विकल्पजालमयी मन से रहित है... शुभ-अशुभ विकल्प जो होते हैं, वह मन के सन्देह है। मनस्वरूप है। शुभ-अशुभभाव। ऐसा जो मन, उससे परमात्मा रहित है। आहाहा! विकल्प है न? शुभ-अशुभ जो राग होता है, वह (विकल्प है)। परमात्मा, ऐसा आत्मा का स्वरूप, उससे मन विपरीत है। उससे रहित आत्मा है। समझ में आया? परमात्मा आत्मा का जो स्वभाव त्रिकाल स्वरूप, उससे विपरीत मन सम्बन्धी विकल्प है। उस मन से परमात्मा रहित है। उस मन के विकल्प से भिन्न पड़कर अकेला ज्ञानस्वरूप है, उसका ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। **'अमनाः' परमात्मा से विपरीत विकल्पजालमयी...** उससे रहित। भाषा... आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प जाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : जान, विकल्प है उसे जाने। वह विकल्प जाल है। आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प का जाल है। ऐसा जो मन, वह परमात्मस्वरूप से विपरीत, उससे रहित भगवान है। ऐसा लिया।

अब वह विकल्प उत्पन्न हो, उसका वापस विवाद। कोई कहे कि भाई! स्व हेतु से विकल्प उत्पन्न होता है। पंचास्तिकाय की ६२ गाथा। वहाँ सिद्ध करना है कि इसके अस्तित्व की पर्याय में राग-द्वेष होते हैं। यह उसका अस्तित्व है। उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं। वहाँ ऐसा कहा। दूसरी जगह ऐसा कहा कि रागादि हों, (वह) स्व-पर हेतु है। उपादान और निमित्त दो होकर होते हैं, ऐसा कहा है। यहाँ अकेला उपादान से

हो, यहाँ निश्चय सिद्ध किया है और स्व-पर हेतु हो, वहाँ विभाव निमित्त के लक्ष्य से होता है, इसलिए स्व-पर हेतु कहा। तीसरी जगह ऐसा कहा। ऊपर आया था न? वह कर्म सम्बन्धी है, इसलिए विकार कर्मजनित। क्या अपेक्षा है? वह विभाव है। है तो अपनी पर्याय का स्वयंसिद्ध होना वहाँ। परन्तु निमित्त के लक्ष्य से होता है, इसलिए उसे स्व-पर हेतु कहा। और त्रिकाली स्वभाव में नहीं, इसलिए उसे अकेले कर्मजन्य कहकर छुड़ाना चाहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है। समझ में आया? और कहीं तो इस व्यवहार मोक्षमार्ग को साधन कहा है। निश्चय मोक्षमार्ग को साध्य कहा है। पंचास्तिकाय।

मुमुक्षु : निश्चय साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन है न? ऐसा। व्यवहार साधन अर्थात् उसे राग की मन्दता के शुभभाव की जाति होती है, उसे व्यवहार साधन का आरोप दिया है। व्यवहारनय से। पंचास्तिकाय में बहुत कथन है। व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। वहाँ यह राग की मन्दता निमित्तरूप से है, उसे व्यवहार साधन का आरोप दिया है। यहाँ तो इनकार करते हैं कि उस साधन से भिन्न होकर (जान)। आहाहा!

जिसे आत्मा वस्तु कहते हैं, वह तो इस व्यवहार के विकल्प के साधन से रहित है। '**अमनाः**' कहा न? आहाहा! रहित है, उसे तू साधन कर। आत्मा विकल्प के भाव से रहित है। उसे साध्य बना। उसे साधकपने में साध्य कर। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! विवाद... विवाद... विवाद...। एक शब्द हुआ। '**आत्मा अमनाः**' मन अर्थात्? विकल्प का जाल। और वह विकल्प का जाल परमात्मस्वरूप से रहित है ऐसा जो मन, उससे रहित होकर... आहाहा! चैतन्य स्वभाव को साध। आहाहा! उसे ध्यान में ले और उसका ध्यान कर। वह है यह। आहाहा!

'**अनिन्द्रियः**' यह आत्मा अणीन्द्रिय है। **शुद्धात्मा से भिन्न इन्द्रिय-...** देखा! व्याख्या ऐसी करते हैं न? इन्द्रियाँ कैसी है? **शुद्धात्मा से भिन्न इन्द्रिय-समूह से (प्रभु) रहित है...** आहाहा! है कैसा तब? रहित कहा। मन से रहित, इन्द्रिय से रहित। है

ज्ञानमय। वह तो स्व-परप्रकाशक स्वभाव का पिण्ड है। ज्ञानमय है। देखा! **लोक और अलोक के प्रकाशनेवाले केवलज्ञानस्वरूप है,...** केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञानस्वरूप, ऐसा। वह केवलज्ञान पर्याय नहीं। अकेला ज्ञानस्वरूप है।

'**मूर्तिविरहितः**' तीसरा बोल। **अमूर्तिक आत्मा से विपरीत स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्तिरहित है,...** यह अमूर्तिक आत्मा से रहित मूर्तपना, उससे रहित भगवान आत्मा है। आहाहा! क्या है? '**चिन्मात्रः**' **अन्य द्रव्यों में नहीं पायी जावे, ऐसी शुद्धचेतनास्वरूप ही है,...** शुद्ध चेतना। पहले ज्ञानमय कहा था न? वह शुद्ध चेतना, निर्मल चेतना, वह वस्तु है। **और... 'इन्द्रियविषयः नैव' इन्द्रियों के गोचर नहीं है,...** भगवान आत्मा यह पाँच इन्द्रियाँ, जड़, भावेन्द्रियाँ, उन्हें प्रभु गम्य नहीं है। आहाहा! वह अणीन्द्रिय है। **इन्द्रियों के गोचर नहीं है,...** आहाहा! तब गम्य किस प्रकार है?

वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है। आहाहा! देखो! पहले सम्यग्दर्शन में ही वीतराग स्वसंवेदन—रागरहित निर्विकल्प परिणति स्वसंवेदन—अपने आनन्द का वेदन, (उससे ग्रहण होता है)। आहाहा! इन्द्रिय है, उसकी ओर का झुकाव तो आकुलता है। उस आकुलता से रहित भगवान, **वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है।** प्रथम में प्रथम चौथे गुणस्थान में राग सहित ग्रहण होता है, आठवें में वीतराग सहित, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : एक ही वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु एक ही है। समझ में आया?

भगवान आत्मा चिन्मय, ज्ञानमय, शुद्ध चेतनास्वरूप है, वह वीतराग परिणति से ग्राह्य है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी वह ग्राह्य नहीं। आहाहा! भगवान चिन्मय वस्तु, आनन्दमय वस्तु, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, वह अतीन्द्रिय वीतराग परिणति द्वारा ही प्राप्त होता है, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है। इसका अर्थ यह कि स्वयं वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! उसे अरागी, वीतरागी परिणति से वह अनुभव में आता है। वीतरागी परिणति से वह ग्रहण हो सकता है। आहाहा! ऐसा मार्ग! इन्द्रियातीत,

मनातीत। आहाहा! फिर इन्द्रिय का विषय नहीं। उसकी ओर ढलते हुए अरागी दशा को ग्राह्य है वह। समकित की परिणति, (वह) अरागी परिणति है। समझ में आया?

'एतत् लक्षणं' प्रगट कहे गये हैं... आहाहा! ऐसा लक्षण तो प्रगट कहा है। **'निरुक्तम्'** सर्वज्ञों ने—परमात्मा ने (ऐसा लक्षण कहा है)। आहाहा! इन्द्रिय के विषय की ओर जाने से तो राग होता है। इन्द्रिय के विषय से और इन्द्रिय से अगम्य। आहाहा! उसके झुकाव में वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान और वीतरागी स्वरूप के आचरणरूप स्थिरता, उस द्वारा ग्राह्य है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो वह निश्चयरत्नत्रय को ग्राह्य है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो द्रव्य के आश्रय से निश्चयरत्नत्रय प्रगट होता है। उस निश्चयरत्नत्रय के आश्रय से ज्ञात होता है। क्या कहा, समझ में आया?

वस्तु है भूतार्थ त्रिकाल, उसके आश्रय से निश्चयरत्नत्रय प्रगट होता है। स्व के आश्रय से। और ऐसे गुलांट खाकर कहें तो निश्चयरत्नत्रय से वह ज्ञात होता है। समझ में आया? ऐसी शैली ली है। वहाँ लिया कि भूतार्थ के आश्रय से भगवान परमात्मस्वरूप पूर्ण आनन्द का नाथ प्रभु, उसके आश्रय से वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान, स्वरूप की स्थिरता, वह त्रिकाल के आश्रय से होती है। यहाँ कहा कि निर्विकल्प वीतराग की परिणति से वह ग्राह्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : वीतराग परिणति द्वारा ग्राह्य है, यहाँ आश्रय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका आश्रय कहा।

जीव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होते हैं। ऐसा कहा न? (समयसार की) दूसरी गाथा में ऐसा कहा। **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** दूसरी गाथा। जीव स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर होता है, वह स्वसमय है। ऐसा कहो या दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रिकाल के आश्रय से प्रगट होते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? कहो, देवजीभाई! ऐसी बातें हैं यह। आहाहा! ऐसा लक्षण कहा है। भगवान सन्तों ने मन और इन्द्रिय और मूर्तपनेरहित ऐसा जो आत्मस्वभाव, वह स्वयं वीतरागस्वरूप है। इसलिए वीतराग परिणति द्वारा वह ग्राह्य होता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? वह यह अन्दर एकाग्र होना वह।

मुमुक्षु : यह अर्थात् ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक की एक बात है। अन्तर एकाग्र हुआ तो वीतराग दशा आयी, वीतराग दशा द्वारा वह ग्राह्य हुआ। आहाहा! बापू! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! अनादि से चौरासी के अवतार में दुःखी है, दुःखी है। उस दुःख के भोग से इसे अलग करना है। तो प्रभु तो आनन्दमय है न? कहते हैं कि उसके आश्रय से वीतरागता प्रगट हो। पर के आश्रय से तो राग प्रगट होता है। वह कहीं साधन नहीं है। आहाहा! स्वयं भगवान ज्ञानस्वरूप का आश्रय लेकर जो निश्चय वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उससे वह ग्राह्य हुआ। पण्डितजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! व्यवहार साधन कहा बहुत जगह, पंचास्तिकाय में। निश्चय का साधन सिद्ध किया। ऐसी गाथा आती है। भाई! यह सब व्यवहार आता है, इसलिए उसे बतलाया है और उसे आरोप से निश्चय का साधन कहा है। आहाहा! यहाँ तो इनकार किया। वह तो वस्तु स्वयं है, पूरी चीज़, उसका जहाँ स्वीकार होता है, तब ही वीतराग परिणति खड़ी होती है और उस वीतराग परिणति से वह स्वीकार होता है। इसका अर्थ यह। कान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : विकल्प जाल से, मन से, इन्द्रिय से रहित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रहित है। आहाहा!

वही आत्मा है। आहाहा! है न? **उसको ही तू निःसन्देह आत्मा जान। इस जगह जिसके ये लक्षण कहे गये हैं, वही आत्मा है,...** ज्ञानमय, चैतन्यमय उसका साधन वीतरागदशा द्वारा कर तो तुझे वह प्राप्त होगा। अथवा उस वस्तु का आश्रय कर तो वीतराग परिणति प्रगट होगी। आहाहा! ऐसा मार्ग, इसलिए व्यवहारवालों को ऐसा लगे न! पंचास्तिकाय में तो बहुत गाथायें आती हैं। यह निश्चय का साधन कहा व्यवहार। व्यवहार साधन, निश्चय साध्य है। व्यवहार तो राग है। निश्चय साधन स्वभाव का राग से भिन्न पड़कर किया है। वह इस साधन में राग की मन्दता अभी बाकी है, उसे साधन का आरोप दिया है। है तो बाधक।

समयसार नाटक में आता है। जो-जो साधक है, वह-वह वहाँ बाधक है। राग-

द्वेष की बात क्या करना ? कहते हैं। ऐसा आता है। समयसार नाटक में। आहाहा! नय, निक्षेप और प्रमाण से जीव को साधना, वह सब विकल्प है। वह साधक जहाँ कहा, वही बाधक है। आहाहा! व्यवहार साधक कहा है। निश्चय साधक के साथ सहचर देखकर उपचार से साधक कहा है। ऐसी बात है। आनन्द के नाथ का जिसे अनुभव करना हो... ऐसा कहते हैं। जिसे आनन्द का भोग करना हो (उसके लिये बात है)। अरे! अनादि से पुण्य-पाप के राग का भोग करता है, वह दुःख का अनुभव है। विषय में उसे मजा दिखता है, वह सब दुःख है, बापू! आहाहा! शरीर, माँस और हड्डियाँ-चमड़ी, उसकी चमक-दमक देखकर अन्दर में इसे प्रसन्नता होती है, यह दुःख है। चमक-दमक समझते हो ? शरीर रूपवान ऐसा दिखाई दे। आहाहा!

यह वस्त्र अच्छे पहने, गहने सोने के लटकते एक ऐसे हो और ऐसे हो। मारवाड में तो यहाँ पहने न सोने के। आहाहा! मुर्दे को श्रृंगार करते हैं।

मुमुक्षु : मुर्दा किसका ? परन्तु जीवता मुर्दा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवता नहीं। यह मुर्दा ही है, अभी। (समयसार) ९६ गाथा में कहा न ? मृतक कलेवर में अमृत का सागर मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! ९६ (गाथा) समयसार ९६ गाथा में है। **मृतक कलेवर (—शरीर) द्वारा...** यह शरीर अभी मुर्दा है।

मुमुक्षु : जीवित शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी बात है।

मृतक कलेवर (—शरीर) द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन... यह अमृत कलेवर और अमृत विज्ञानघन—भगवान। **परम अमृतरूप विज्ञानघन...** मृतक कलेवर में चमक देखकर मूर्च्छित हो गया है। यह श्मशान की हड्डियों की चमक है। क्या कहलाती है वह ? फोसफरस (चमक)। आहाहा! **मृतक कलेवर द्वारा...** संस्कृत है, हों! आहाहा! देखो! संस्कृत '**मृतककलेवरमूर्च्छित-परमामृतविज्ञानघनतया**' आहाहा! भगवान अमृत का सागर प्रभु, अतीन्द्रिय अमृत के स्वभाव से भरपूर, वह इस मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया है। यह मेरा और यह मुझे ठीक। यह बाद में गाथा में कहेंगे। शरीर-तन से

वैराग्य पा, भाई! तन, भोग और... बाद की गाथा में आयेगा। है न ३४? ३२। '**भव-तणु-भोय-विरत्त**' यह बाद में आयेगा। आहाहा!

मृतक कलेवर में अमृत का सागर परमात्मा मूर्च्छित हो गया है। उसमें अर्पित हो गया है। अमृत सागर मृतक कलेवर में अर्पित हो गया है। आहाहा! समझ में आया? वह मूर्च्छितपना छोड़, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा में अन्तर ममत्व कर। ममत्व अर्थात् 'यह मैं हूँ' ऐसा कर। यह नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! शरीर की जवानी हो, इन्द्रियाँ पुष्ट हों, बड़े मकान हों, पाँच-दस लाख की... क्या कहलाता है? फर्नीचर... फर्नीचर। आहाहा!

हम अभी गये थे न मुम्बई। नहीं? मणिभाई नहीं? मणिलाल नहीं? मणिलाल के यहाँ आहार करने गये थे। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं और पाँच-साढ़े पाँच लाख रुपये का तो फर्नीचर। हमने चरण किये तो नीचे क्या कहलाता है वह? गलीचा। गलीचा बिछाया हुआ। अरेरे! इसमें से निकलना मुश्किल पड़ेगा, कहा। मखमल-मखमल। मखमल के ऐसे बिछाये हुए। गृहस्थ व्यक्ति है। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। यह शान्ताबेन हैं न, उनकी बहिन है। उनके वे... रसिकभाई के बहिनोई है। बहिन के वे ननदोई हैं। पैसा बहुत और 'ऐडन' में कुछ दुकान है। अरे रे! कहा। यह सब फर्नीचर, गलीचा और घर... क्या कहलाता है तुम्हारे यह बैठने का? कुर्सियाँ। कुर्सियाँ और अलमारी में अलग प्रकार के खिलौने और... आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है? भाई! ऐसी क्रीड़ा में रम गया, प्रभु! मूर्च्छित हो गया है, कहते हैं। तीन लोक का नाथ आनन्द का कन्द प्रभु है न! आहाहा! भाई! तुझे तेरे समीप जाना सुहाता नहीं? और तेरा नहीं, वहाँ समीप में जाकर सुखी हुआ, ऐसा माना है, भाई! वह सुख नहीं है। वह तो अंगारा है। आहाहा! कषाय के अंगारों से सिंकता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह जो लक्षण कहे—ज्ञान द्वारा, अतीन्द्रिय द्वारा ज्ञात हो। आहाहा! **वही आत्मा है, वही उपादेय है,...** धर्मी को तो यह एक उपादेय है। पर्याय भी उपादेय नहीं तो फिर राग और बाहर की चीज़ का क्या कहना? समझ में आया? **वही उपादेय है, आराधने योग्य है,...** आहाहा! वीतरागमूर्ति आनन्दस्वरूप भगवान, वह आराधनेयोग्य,

सेवनयोग्य वह है और वही आदरणीय है। इसके अतिरिक्त आदरणीय है नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु, वह आदरणीय है। आहाहा!

मुमुक्षु : आदरणीय अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहण करनेयोग्य—उपादेय।

मुमुक्षु : ग्रहण अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें एकाकार होनेयोग्य। आहाहा! यह बाहर की बातों में बेचारे। यह देखो न, बाहर की यात्रा-बात्रा करने निकले हों न बेचारे। वे ऐसा माने कि... आहाहा! अपने तो...

मुमुक्षु : दो-चार यात्रा करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी कोई यात्रा? लाख बार यात्रा की।

मुमुक्षु : यह शत्रुंजय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाहर का शत्रुंजय तो अनन्त बार किया। आहाहा! यह तो अन्दर है। तीर्थ तो अन्दर है, भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वहाँ आरूढ़ हो न! तो तुझे यात्रा होगी। जन्म-मरण का अन्त वहाँ आयेगा। यह तो सब पुण्यभाव। पुण्य संसार में प्रवेश कराता है। आहाहा! बाहर की यात्रा सम्मेदशिखर की। वहाँ और ऐसा कहा कि 'एक बार वंदे जो कोई...' ताहिं नरक-पशु (न हो), उसमें क्या भला हुआ? ऐसा कोई भाव हो तो वर्तमान में नरक-पशु में न जाये, बाद में जायेगा। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है, हों! बेचारों को। आहाहा! उन्हें यह आग्रह होता है बाहर का। बाहर की मिठास पड़ी है। आहाहा! यह ३१ (गाथा) हुई।

यह तात्पर्य निकला। है न अन्तिम? यह तात्पर्य निकाला इसमें से, कहते हैं। भगवान आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का दल—कन्द चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह श्रद्धा में आदरणीय है। ज्ञान की पर्याय में वह उपादेय है। आहाहा! पहली बात ही ऐसी कठिन पड़े। अभ्यास नहीं। जाति के घर में... उसमें कहा है न? उसमें नहीं? धवल में 'दिठमगेण'—ऐसा शब्द आता है। जिसने अन्दर में रागरहित जाने की दशा देखी है।

गिरिगुफा, लिखा है न? ४९। ४९ गाथा में, जयसेनाचार्य में। आहाहा!

'**निर्विकल्पनिर्मोहनिरंजननिजशुद्धात्मसमाधिसंजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे**' इस गिरि में जा। बाहर में पर्वत में जाकर क्या (करना है)? आहाहा! '**भिन्न जनसमस्तमनोवचनकायव्यापारेषु दुर्लभः स एवापूर्वः सचैवोपादेय इति मत्वा निर्विकल्पनिर्मोहनिरंजननिजशुद्धात्म**' अपना आत्मा, हों! वापस भगवान का आत्मा, ऐसा नहीं। '**समाधिसंजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे**' आहाहा! आनन्द की अनुभूतिरूपी '**गिरिगुहागह्वरे**' ऐसी गिरि और गुफा में जाकर उसका ध्यान कर। '**सर्वतात्पर्येण ध्यातव्य इति**' उसका ध्यान कर। आहाहा! ४९ आ गयी है। अपने तो दूसरी चलती है न?

गाथा - ३२

अथ संसारशरीरभोगनिर्विण्णो भूत्वा यः शुद्धात्मानं ध्यायति तस्य संसारवल्ली नश्यतीति कथयति -

३२) भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ।।३२।।

भवतनुभोगविरक्तमना य आत्मानं ध्यायति।
तस्य गुर्वी वल्ली सांसारिकी त्रुटयति।।३२।।

भवतनुभोगेषु रञ्जितं मूर्छितं वासितमासक्तं चित्तं स्वसंवित्तिसमुत्पन्नवीतरागपरमानन्द-सुखरसास्वादेन व्यावृत्य स्वशुद्धात्मसुखे रतत्वात्संसारशरीरभोगविरक्तमनाः सन् यः शुद्धात्मानं ध्यायति तस्य गुरुक्की महती संसारवल्ली त्रुटयति नश्यति शतचूर्णा भवतीति। अत्र येन परमात्मध्यानेन संसारवल्ली विनश्यति स एव परमात्मोपादेयो भावनीयश्चेति तात्पर्यार्थः।।३२।। इति चतुर्विंशति-सूत्रमध्ये प्रक्षेपकपञ्चकं गतम्।

आगे जो कोई संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होके शुद्धात्मा का ध्यान करता है - उसी के संसाररूपी बेल नाश को प्राप्त हो जाती है, इसे कहते हैं -

भव भोग तन से विरत मन युत आतमा के ध्यान को।
जो करे उसकी महा भव-बेली नियम से नष्ट हो।।३२।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो जीव [भवतनुभोगविरक्तमनाः] संसार, शरीर और भोगों में विरक्त मन हुआ [आत्मानं] शुद्धात्मा का [ध्यायति] चिंतवन करता है, [तस्य] उसकी [गुर्वी] मोटी [सांसारिकी वल्ली] संसाररूपी बेल [त्रुटयति] नाश को प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ :- संसार, शरीर, भोगों में अत्यंत आसक्त (लगा हुआ) चित्त है, उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए वीतराग परमानंद सुखामृत के आस्वाद से राग-द्वेष से हटाकर अपने शुद्धात्म-सुख में अनुरागी कर शरीरादिक में वैरागरूप हुआ जो शुद्धात्मा को विचारता है, उसका संसार छूट जाता है, इसलिये जिस परमात्मा के ध्यान से संसाररूपी बेल दूर हो जाती है, वही ध्यान करने योग्य (उपादेय) है।।३२।।

गाथा - ३२ पर प्रवचन

३२। **आगे जो कोई संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होके शुद्धात्मा का ध्यान करता है, उसी के संसाररूपी बेल नाश को प्राप्त हो जाती है,...** संसाररूपी बेलड़ी। आहाहा! चौरासी का बड़ा भ्रम जाल, उसकी बेल टूटती है कि जो संसार, उदयभाव, शरीर और भोग से विरक्त (होता) है। आहाहा! स्वभाव में से संसरण कर उदयभाव में निकला है और वह संसार है। वह **संसार, शरीर, भोग...** विषयों के। आहाहा! उससे **विरक्त होके...** रक्त है, उससे विरक्त होकर। आहाहा! उदय, शरीर, भोग में अनादि का रक्त है। उसमें से विरक्त होकर। यह विरक्ति। समझ में आया? बाहर के स्त्री-पुत्र छोड़े और विरक्त हो गये, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! 'विरला जाने तत्त्व को विरला जाने कोई...' यह सब आता है न? श्रद्धे कोई। आहाहा! 'ध्यावे तत्त्व को...' आहाहा! ऐसी चीज़ है, बापू!

३२) भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ।।३२।।

आहाहा! '**गुरुक्की**' अर्थात् बड़ी।

अन्वयार्थ :- जो जीव संसार, शरीर और भोगों में विरक्त मन हुआ... आहाहा! उदयभाव का कर्तापना और भोक्तापना तथा शरीर के लक्ष्य को छोड़कर। आहाहा! **शुद्धात्मा का चिन्तवन करता है,...** चिन्तवन का अर्थ ध्यान। चिन्तवन अर्थात् विकल्प नहीं। **संसार, शरीर और भोगों में विरक्त मन हुआ शुद्धात्मा का चिन्तवन करता है, उसकी... 'गुर्वी' मोटी संसाररूपी बेल...** आहाहा! अनन्त भव जाल की बेलड़ी, अनन्त भव **नाश को प्राप्त हो जाती है।** अनन्त भव की बेलड़ी नाश हो जाती है। आहाहा! मिथ्यात्व, वही संसार है और उसमें अनन्त भव करने की सामर्थ्य है। आहाहा!

संसार, शरीर, भोगों में अत्यन्त आसक्त (लगा हुआ) चित्त है,... देखा! रक्त है न, उसे विरक्त होना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा? उदयभाव, शरीर और भोग **अत्यन्त आसक्त (लगा हुआ) चित्त है,...** अनादि से चित्त वहाँ लगा है। आहाहा!

उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए... उस चित्त को **उसको आत्मज्ञान से... आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्द सुखामृत के आस्वाद से...** आहाहा! गजब, भाई! उदयभाव, शरीर और भोग, उसमें जो चित्त रक्त है, उसे परमानन्द के नाथ का आश्रय लेकर... आहाहा! जिसे आत्मज्ञान हुआ। देखा? आत्मा का ज्ञान हुआ है। वस्तु भगवान आत्मा, उसका ज्ञान होने से वीतराग परमानन्द सुखामृत। आहाहा! वीतरागी परम आनन्द के सुख का अमृत, उसके **आस्वाद से राग-द्वेष से हटाकर...** आहाहा! ऐसे आनन्द के स्वाद से, राग-द्वेष से चित्त को हटाकर। आहाहा! ऐसी बातें सब। वह तो ऐसा सीधा सट्ट था। सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना।

सामायिक किसे कहना? बापू! आहाहा! आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञान होकर उस स्वरूप में स्थिर हो, उसे सामायिक कहा है। अभी आत्मा कौन, कहाँ है, उसकी खबर नहीं होती और सामायिक कहाँ से आयी? समझ में आया? सामायिक और प्रौषध। जामनगर में बहुत करते हैं। आठम और पंचमी के दिन। बापू! वह प्रौषध नहीं। (संवत्) १९८२ में जब गये न पहले? इसलिए यह बात की। अन्दर व्याख्यान में आयी। वीरजीभाई के पिता थे। वीरजी वकील है न, उनके पिता थे। यह शास्त्र चलता सूत्र कहलाता। साधु-आर्यिका को पढ़ावे। इसलिए यह बात आयी। (संवत्) १९८२ पहले गये जामनगर तब। कहा, भाई! देखो! मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता का सब भाव, यह पुण्यबन्ध का कारण है; धर्म नहीं। यह क्रियायें सब पुण्यबन्ध का कारण, धर्म नहीं। अब उन लोगों ने उस प्रकार से धर्म माना हुआ। इसलिए बेचारे व्यक्ति नरम। कोई नहीं थे, तब शाम को अकेले आये। वृद्ध थे। वीरजीभाई के पिताजी ताराचन्दभाई। महाराज! यह सब धर्म नहीं तो कठिन पड़ता है लोगों को। यह कर्म करते हैं न! भाई! तुम तुम्हारा देखो, कहा। क्या कहा? ज्ञान... ज्ञानसागर, वहाँ का पूनातर का किया हुआ है न? पूनातर, यह देखो! कहा ज्ञानसागर न। मन का शुभभाव, वचन का शुभभाव, काया का शुभभाव, उससे तो नामकर्म—पुण्य बँधता है, ऐसा कहा है, देखो! १९८२ के वर्ष की बात है। बाहर की क्रियायें सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण (करे), वह धर्म। आहाहा! भाई! ऐसा नहीं, कहा।

मन में राग की मन्दता का भाव, वह पुण्यबन्ध का कारण है। उससे नामकर्म

बँधे ऐसा पाठ है। '...' चार प्रकार से शुभ नामकर्म बँधता है। काया की, मन की वक्रता से अशुभ नामकर्म बँधता है। उसमें मन-वचन में शुभभाव आया, वह धर्म कहाँ है? नामकर्म है। वह तत्त्वार्थराजवार्तिक में (कहा है)। पुण्य नामकर्म चार प्रकार से बँधता है। काया, मन, वचन और ... झगड़ा नहीं। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है, कहा। ऐसी क्रिया धर्म नहीं है। उसे धर्म मानता है। परन्तु कठिन पड़ता है वहाँ सबको। सीखा हुआ बहुत नहीं न! मार्ग तो ऐसा है, भाई! इस क्रियाकाण्ड में राग की मन्दता वर्तती हो, वह देहादि की क्रिया, उसे अनुसरकर होते परिणाम, वह शुभ उपयोग बन्ध का कारण है। उसमें आता है—कलश में। दो बात। देह, वाणी, मन की क्रिया और उसे अनुसरता शुभभाव दोनों बन्ध का कारण है। समझ में आया?

वीतराग परमानन्द। आहाहा! वस्तु जो आत्मा ज्ञान और आनन्दमय वस्तु, उसका आश्रय लेने से वीतरागी परमानन्द सुखामृतदशा प्रगट होती है। आहाहा! **वीतराग परमानन्द...** भाषा कितनी! वीतरागी आनन्द और वह भी सुखरूप अमृत। आहाहा! उसके आस्वाद से वे राग-द्वेष छूट जाते हैं। राग-द्वेष चित्त को इसके आस्वाद से, चित्त को राग-द्वेष से विमुख करके। ऐसा लेना। है न पहला?

संसार, शरीर, भोगों में अत्यन्त आसक्त... आहाहा! संसार, शरीर और भोग **अत्यन्त आसक्त (लगा हुआ) चित्त है, उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए...** आहाहा! **वीतराग परमानन्द सुखामृत के आस्वाद से राग-द्वेष से हटाकर...** आहाहा! राग-द्वेष कैसे टले? तब कोई कहे कि भाई! इसका उपाय नहीं शास्त्र में। एक व्यक्ति ने ऐसा कहा। ऐसी बात आयी थी। यहाँ कहा। वह आया था, नहीं? इस ओर से। आया था। इस ओर से आया था। कैसे राग-द्वेष टले, यह शास्त्र में अधिकार नहीं है। आहाहा! अरे! भाई! चित्त में राग-द्वेष है, उसे आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए सुखामृत के स्वाद से छोड़। समझ में आया? उसकी श्रद्धा तो करे, उसके ज्ञान में कि मार्ग तो यह है; दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा!

अपने शुद्धात्म-सुख में अनुरागी... आहाहा! भगवान आत्मा के सुख का अनुरागी। **अनुरागी कर शरीरादिक में वैराग्यरूप हुआ...** आहाहा! शुद्धात्मसुख में अनुरागी, शरीरादि सुख में वैराग्य। आहाहा! भगवान आत्मा के आनन्दस्वरूप का प्रेमी-अनुरागी

और पर से वैरागी। अस्ति-नास्ति किया। आहाहा! **वैराग्यरूप हुआ जो शुद्धात्मा को विचारता है,...** आहाहा! पर से हटकर स्व के स्वभाव के आनन्द के स्वाद को लेता हुआ वह राग-द्वेष को छोड़ता है। वहाँ राग-द्वेष होते नहीं, उसे छोड़ता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा उपदेश अब लोगों को (कठिन लगता है)।

पूजा करो, भक्ति करो, बड़ी रथयात्रा निकालो। यहाँ कितने लोग आये थे! २६ हजार। दरबार देखने के लिये खड़े रहे थे, बेचारे जमींदार। शोभायात्रा निकली थी न! २६ हजार। उस चौक में इकट्ठे हुए थे। ओहोहो! ऐसे लोग कहाँ से! यह सब बाहर का है। आहाहा! दुनिया ने बाहर का देखा है न, अभ्यन्तर चीज़ को देखा नहीं और उसका माहात्म्य आया नहीं; इसलिए बाहर का माहात्म्य हटता नहीं। ऐसे चार-चार हाथी। चार हाथी? कितने थे? पाँच हाथी, २६ हजार लोग, केशुभा और नानभा। नानभा बेचारे गुजर गये। दोनों यहाँ। मैं साथ में नहीं था। दुकान है, वहाँ मैं देखने खड़ा रहा। वे दो भाई राजकोट से आये। ओहोहो! लोग... लोग। सोनगढ़ में ऐसा कभी हुआ न हो। भाई! यह तो बाहर की प्रवृत्ति है। इसमें कदाचित् शुभभाव हो तो वह पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : इससे धर्म हो, ऐसा माने तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब मिथ्यात्व है। ऐसी बातें हैं। बाहर के भपका का माहात्म्य इसे उड़ जाना चाहिए।

मुमुक्षु : निमित्त तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त उसमें क्या करे... करता है, कहते हैं उसे। कौन करे? बापू! होने के काल में होता है। मकान (मन्दिर) होने के काल में हुआ है, भाई! और यह उपदेशक भी ऐसा कि बाहर जाकर, अन्यत्र निमित्त द्वारा उपादान से नहीं होता, यह बात सिद्ध करते हैं। निमित्त का तो सहारा लेते हैं। भगवान! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु..! आहाहा!

निमित्त से होता है, यह तो व्यवहार का कथन है। वास्तव में तो उपादान उस-उस द्रव्य की, उस-उस समय की पर्याय उस-उस समय में उत्पन्न होनेवाली, उसका काल ही था। इसलिए निश्चय से तो स्वहेतु; परहेतु नहीं। परन्तु जब इसे विभाव सिद्ध

करना है, तब इसे कहना है कि भाई! यह विभाव पर के लक्ष्य से होता है, इसलिए यह विभाव स्व-पर हेतु है, ऐसा कहा। पंचास्तिकाय में। स्व-पर हेतु कहा न पंचास्तिकाय में।

मुमुक्षु : यह तो सोनगढ़ की क्रमबद्धपर्याय सिद्ध हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध ही है। सोनगढ़ की है? आहाहा! अरे! भगवान!

मुमुक्षु : सोनगढ़ की या द्रव्य की?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य की ऐसी वस्तु है। जो क्रमसर एक के बाद एक बाद में जो होनेवाली हो वह होती है। उस-उस समय का काल, वह-वह पर्याय वहाँ होती है। यह उसका अस्तित्व सिद्ध करने को उसे द्रव्य-गुण और पर्याय, उसे निमित्त के कारक की अपेक्षा नहीं। अपना अस्तित्व सिद्ध करना, उसमें पर के कारण का क्या काम है? ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय (में) सिद्ध किया है न! ६२ गाथा।

मुमुक्षु : परन्तु ४५ वर्ष पहले तो हमने सुनी नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुनी थी? अभी सुन, उसमें क्या? समझे तब से सवेरा, नहीं कहते? आहाहा!

आत्मानुशासन में ऐसा भी कहा है कि यदि निमित्त से होता न हो तो वह विभाव, स्वभाव हो जायेगा। यह तो विकार सिद्ध करने को (बात है)। परन्तु यहाँ तो विकार भी उस समय का वह स्वतन्त्र है। उसके अस्तित्व में पर की अपेक्षा नहीं है। वह है, उसे पर की अपेक्षा क्या? ऐसा कहते हैं। अस्तिकाय सिद्ध करना है न? आहाहा! और यहाँ तो उसे कहते हैं कि भाई! उस राग की ओर का झुकाव है न, उसे निमित्त की ओर का। इसलिए राग होता है। है तो अपने से हुआ। परन्तु निमित्त के लक्ष्य से हुआ, इसलिए विभाव को सिद्ध करने के लिये स्व-पर हेतु कहा। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। जो भगवान आत्मा उदयभाव, शरीर और भोग से विरक्त होकर आनन्द के नाथ में लीन होकर जो ऐसे राग को छोड़ता है... आहाहा! उसका संसार छूट जाता है। **जिस परमात्मा के ध्यान से संसाररूपी बेल दूर हो जाती है, वही ध्यान करने योग्य (उपादेय) है।** यह इसका सार है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)